International Journal of Sanskrit Research 2021; 7(4): 282-283

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2021; 7(4): 282-283
© 2021 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 16-05-2021
Accepted: 23-06-2021

डॉ. अशोक कुमार दुबे
एसोशिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, बी0एस0एन0वी0 पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
डॉ. अशोक कुमार दुबे
एसोशिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, बी0एस0एन0वी0 पी0जी0 कॉलेज, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत

शब्दार्थ समालोचना

डॉ. अशोक कुमार दुबे

प्रस्तावना

साहित्यशास्त्र में प्रायः सभी काव्यशास्त्रियों ने 'शब्द और अर्थ' को काव्य का शरीर स्वीकार किया है। इस 'शब्दार्थ' को परस्पर द्वन्द्व समास से निष्पन्न 'शब्दार्थौ शब्द का यथार्थ परिचय निष्पत्ति के आधार पर प्राप्त किया जा सकता है। वस्तुतः उक्त शब्द की निष्पत्ति 'द्वन्द्व समास' से हुई है। द्वन्द्व समाज विधायक पाणिनि–वचन 'चार्थे द्वन्द्व' [1] सूत्र च 'अन्वय' के अर्थ में विद्यमान सुबन्तौ की समास संज्ञा करता हैं इन सूत्र में स्थित 'च' के चार अर्थ बतलाए गए हैं। जिसमें यहाँ पर 'इतरेतरयोग' अर्थ में विद्यमान 'च' माना गया है। इस 'इतरेतरयोग' से अभिप्राय है–होने वाले पदों का परस्पर आक्षेप और उद्भूतावयवभेद का पुरःसर एकधर्मविच्छिनन होकर अन्वित होगा।

प्रकृत में इस 'शब्दार्थ' का स्वतन्त्र अस्तित्व होते हुए भी अभिव्यंजकता में दोनों का समान रूप से अन्वय विवक्षित है। जिसके फलस्वरूप दोनों में समानरूप से काव्यता लक्षणकार–सम्मत स्वीकृत होती है। उदाहरणार्थ–

1. आचार्य भामह के अनुसार– 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्'
2. ध्वन्यालोक के पूर्वपक्षी के रूप में उद्धृत (पृष्ठ सं0 5) –'शब्दार्थ–शरीरे तावत् काव्यम्'
3. काव्यलक्षण (वही पृष्ठ संख्या–6) – 'सहृदयहृदयादि शब्दार्थमयत्वमेव'
4. काव्यप्रकाश (प्रथम उल्लास/4) – 'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि'
5. शिशुपालवध में उद्धृत –

यद्यपि कुछ काव्यशास्त्री काव्य लक्षण में शब्दमात्र या अर्थमात्र के प्रति अपना प्रदर्शित किया है किनतु यह बात युक्ति संगत नहीं लगती। इसका कारण है कि शब्द के बिना अर्थ या अर्थ के बिना शब्द की कल्पना नहीं की जा सकती। दोनों एक–दूसरे के सहायक होते हैं। प्राचीन शास्त्रों में शब्दार्थ का अभिन्न सम्बन्ध स्वीकार किया गया है। पतंजलि के महाभाष्य में उद्धृत ''सिद्धे शब्दार्थ सम्बोध' यह जो कात्यायन का वार्तिक है। स्पष्ट करता है कि शब्द, अर्थ और उसका सम्बन्ध–ये तीनों ही सिद्ध हैं। तथ्य क ओर जैमिनि ने अपने मीमांसा दर्शन के आरम्भ में संकेत किया है कि शब्द और अर्थ का परस्पर सम्बन्ध स्वाभाविक है।

औरपत्तिकस्तु शब्दस्थार्थेन सम्बन्धः। [2]

इस शब्दार्थ सम्बन्ध के सन्दर्भ में सामान्य युक्तियों से भी यह स्पष्ट होता है कि सर्वप्रथम हम 'शब्द' को सुनते हैं, उसके पश्चात् हमें अर्थ का बोध होता है। अर्थ के अभाव में शब्द–श्रुति निष्फल हो जाती है। लेकिन जहाँ कहीं एकमात्र शब्द का प्रयोग होता है वहाँ भी उसके आभ्यन्तर में अर्थ की सत्ता निहित रहती है।

साहित्यशास्त्र में शब्द के तीन भेद माने जाते हैं– 1. वाचक, 2. लाक्षणिक और 3. व्यंजक।

'स्याद्' वाचको लाक्षणिकः शब्दोऽत्र व्यंजकस्त्रिधा।' [3]

इसी प्रकार अर्थ भी तीन प्रकार के माने गए हैं–1. वाच्य, 2. लक्ष्य और 3. व्यंग्य।

'वाच्यादयस्तदर्थाः स्युः।' [4]

वाच्य–लक्ष्य–व्यङ्गयाः (काव्यप्रकाश / द्वितीय उल्लास / .....)

भाट्टमतानुयायी मीमांसक लोग वाक्य को अर्थ करने के लिए एक नवीन अर्थ 'तात्पर्यार्थ को स्वीकार करते हैं–

1. 'आकाङ्क्षा–योग्यता–सन्निधिवशाद् वक्ष्यमाणस्वरूपाणां पदार्थनां समन्वये ताप्पर्यार्थो विशेषवपुरपदार्थोऽपि वाक्यार्थः समुल्लसतीति 'अभिहितान्वयवादिनां मतम्। वाच्य एव वाक्यार्थ इति 'अन्विताभिधानवादिनः।'
2. पदानि हि स्वंस्वर्थमभिधाम निवृत्तव्यापाराण्यथेदानीमथा अवगता वाक्यार्थ सम्पादयन्ति। [6]

शब्द और अर्थ को जोड़ने के लिए शक्तियाँ या वृत्तियाँ मानी गयी हैं अर्थानृसार ये वृत्तियाँ भी चार होती हैं– अभिधा, लक्षणा और व्यंजना। तात्पर्यार्थ मानने वाले तात्पर्यास्या वृत्ति स्वीकार करते हैं। इसलिए विश्वनाथ ने व्यंजना को अन्य वृत्तियों की अपेक्षा तुर्यावृत्ति कहा है–

वृत्तीनां विश्रान्तेरगिधातात्पर्यलक्षणाख्यानाम्।
अंगीकार्यात्तुर्या वृत्ति र्बोधे रसादीनाम्।।[7]

सामान्यतः इन वृत्तियों का शब्दार्थ–निरूपण में जो योगदान है उसकी संक्षिप्त चर्चा की जा सकती है।

अभिधा : अभिधा शब्द की प्रथम शक्ति है। किसकी द्वारा संकेतित या प्रसिद्ध अर्थ का बोध होता है।

तत्र संङ्केतितार्थस्य बोधनादग्रिमाऽभिधा।
संङ्केतो गृह्यते जातौ गुण–द्रव्य–क्रियासु च।। [8]

जैसे 'गौ' कहने से सास्ना, लांगूल, ककुद, खुर और विषाण से युक्त जीवित चतुष्पापद पीला प्राणी का बोध होती है। वैसे ही उस शब्द का मुख्य अर्थ है, जिसे अभिधा भवित्र अवगत कराती है। शास्त्रों में हइस विषय पर विविध विवाद है कि संकेत का ग्रहण कहाँ होता है? जाति, गुण, द्रव्य या क्रिया ये चार स्थल, जहाँ सामान्यतया संकेत ग्रहण होता है। जो कुछ भी हो इस शक्ति द्वारा शब्द के साक्षात् अर्थ को बोध होता है। किसी दूसरी शक्ति से अवतरित न होने पर ही यह अभिधा शक्ति प्रवृत्त होती है।

लक्षणा : यह वह शक्ति है जब शब्द का अर्थ अन्वय की असंगति से बाधित होता है–

अन्वयानुपपत्तिस्तार्प्यानुपपत्तिर्वा लक्षणाबीजम्। [7]

और दूसरे सम्बद्ध अर्थ की प्रतीति रूढ़ि अथवा प्रयोजन के कारण हो–

मुख्यार्थबोधे तद्योगे रूढ़िितोऽथ प्रयोजनात्।
अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत् सा लक्षणारोपिता क्रिया। [10]

जैसे–'गंगायां घोषः' यहाँ गंगा का मुख्य अर्थ नदी प्रवाह है जो घोष का अधिकरण नहीं हो सकता। इसलिए मुख्यार्थ की बाधा हो जाने से तटरूप सम्बद्ध अर्थ की प्रतीति होती है। किन्तु प्रश्न हो सकता है 'गंगातीरे' न कहकर 'गंगायां घोषः' कहने में क्या आनन्द है? दूसरे शब्दों में कहें कि इसका प्रयोजन क्या है? उत्तर होगा कि घोष में शैल एवं पावनत्व का अभिशय द्योतित करने के लिए ऐसा लाक्षणिक प्रयोग किया गया है। लाक्षणिक प्रयोग को औपचारिक या शाक्त प्रयोग भी कहते हैं। अलंकारों में विशेषतः रूपक अलंकार और वक्रोक्ति में लक्षण किसी न किसी रूप में रहती है।

सादृश्याल्लक्षणा वक्रोक्तिः। [11]

इसलिए किसी भी कवि के काव्य में लक्षणा वृत्ति का महत्त्व निर्विवाद है। सत्य यह है कि केवल अभिधा वृत्ति आश्रय लेने वाले कवि इतिवृत्त मात्र का निरूपण करते हैं, किसी प्रकार की चारूता या सौन्दर्य का चमत्कार नहीं दिखा पाते हैं। ऐसे ही लोगों के लिए दण्डी ने–'गतोऽस्तमर्कः भातीन्दुर्यान्ति वासाय पक्षिणः' कहकर उपहास वचन प्रयुक्त किए है। वैसे कालिदास जैसे महाकवियों की वाणी में तो एक अन्य वृत्ति ही होती है। जिसे व्यंजना कहते हैं। जिससे ध्वनि निकलती है। आनंदवर्धन ने इसे ही प्रतीतमान अर्थ कहा है।

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्
यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवांगनाषु।। [12]

व्यंजना

व्यंजना शक्ति शब्द और अर्थ आदि की वह शक्ति है जो अभिधा आदि वृत्तियों के स्वव्यापार विरह हो जाने पर एक ऐसे अर्थ का बोध कराती है जो ..... विलक्षण प्रकार का होता है। इसका सुप्रसिद्ध उदाहरण हैं'–

निश्शेषच्युतनचन्दनं स्तनतटं निर्मृष्टरागोऽधरो
नेत्रे दूरमनंजने पुलकिता जन्वी तवेयं तनुः।
मिथ्यावादिनि दूति बान्धवजनस्याज्ञातपीड़ागमे
वापीं स्नातुमितो गताऽसि न पुनस्तस्याधमस्यान्तिकम्।।
वापीं स्नातुमितो गताऽसि न पुनस्तस्योधमस्यन्तिकम्।। [13]

इस श्लोक में वाच्यार्थ यह है कि उसकी सखी वापी में स्नान करने गयी थी, न कि उसके अधम प्रियतम के पास। किन्तु 'अधम' शब्द का प्रयोग यह व्यंजित करता है जैसी अवस्था लिए हुए वह दूती आ रहा है वह दूती आ रही है। वह उसके प्रियतम के पास रमवाश्र जाने की सूचना दे रही है।

'अत्र तदन्तिकमेव रन्तुगंताऽहकम प्राधान्पेनाऽधमपदेन व्यंजते।'

पूर्व में कहा जा चुका है कि यह व्यंजना वृत्ति ही महाकवियों की वाणी का सार है। आनंदवर्धन ने तो यहाँ तक कहा है कि यह एक प्रकार से अनिर्वचनीय भाव को प्रकट करने वाली वृत्ति है। जिस प्रकार किसी नारी का लावण्य उसके अंगों के व्यक्तिगत सौन्दर्य से पृथक एक पदार्थानतर है जो अंगों से सर्वथा भिन्न भी नहीं है। अंगों के आधार पर ही वह समष्टिगत लावण्य प्रस्फुटित होता है और अंगों से एक अलग सौन्दर्य का आधान करता है। इसी प्रकार प्रसिद्ध शब्द, धम्र, वर्ग आदि के आश्रित होने पर की उन सबों के विलक्षण धर्म उत्पन्न होता है, जिसे व्यंग्यार्थ या प्रतीयमानार्थ कहते हैं।

व्यंजना का जो काव्यगत प्रयोग होता है वह सर्वथा अपने उत्कृष्टतम्, अभिधान के साथ सम्बद्ध है। अपनी कल्पना शक्ति का नियोजन करके कवि भाषा के शब्दों को ऐसी शक्ति प्रदान करता है कि उन्हें सुनकर सहृदय को यथार्थबोध ही नहीं होता है। अपितु परिणति की अवस्था में पहुँचकर रस–संवेदन में जो विशेशता सहायक होती है। इस प्रकार शब्दार्थ समालोचना सिद्ध होता है।

सन्दर्भ

1. चार्थे द्वन्द्वः (2 / 2 / 28) पा0सू0 सि0कौ0प्र0–91
2. जैमिनीय मीमांसा सूत्र 1.1.5
3. काव्य प्रकाश 2 / 6
4. काव्य प्रकाश, पृ0 19
5. न्यायमंजरी, पृ0 265
6. सा0द0 5 / 1
7. सा0द0 2 / 4
8. द्रष्टव्य न्यायसिद्धान्तमुक्तावली–शब्दलक्षण
9. काव्यप्रकाश 2 / 9
10. काव्यालंकार सूत्रवृत्ति
11. ध्वन्यालोक 1 / 4
12. काव्यप्रकाश, पृ0 14 पर उद्धृत
13. काव्यप्रकाश, वही